ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 251-253

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

वैश्विक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेशों की प्रासंगिकता

आशाराम Email : sddswomenscollege@gmail.com

Received- 28.06.2020, Revised- 01.07.2020, Accepted - 04.07.2020

सारांश– ***भगवद्गीता एक सार्वभौम धर्म का ग्रंथ है। इसके उपदेश विश्व के समस्त मानवों के लिए आज भी प्रासंगिक हैं।धर्म,जाति,घर–परिवार से ऊपर उठकर सम्पूर्ण विश्व में सार्वभौम धर्म का उपदेश देने वाला, समानता, कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्ति योग का उपदेष्टा,सुख एवं शांति के मार्ग का प्रदर्शक, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति से समन्वित, पुरुषार्थ का प्रेरक, भगवान श्री.ष्ण के मुखारविंद से निकली हुई श्रीमद्भगवद्गीता की आज के नैतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मानवीय मूल्यों के ह्रासोन्मुखी समय के परिप्रेक्ष्य में नितांत आवश्यकता है।***

कुंजीभूत शब्द–भगवद्गीता, सार्वभौम, धर्म, ग्रंथ, उपदेश, प्रासंगिक, जाति ।

एसोसिएट प्रोफेसर–संस्कृत मा० प्र० त्रि०राजकीय महिला महाविद्यालय, खलीलाबाद संतकबीरनगर,उ०प्र० भारत

अनुरूपी लेखक

विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि मानव है। सृष्टि कर्ता ने मानव को इस योग्य बनाया कि वह अपने कल्याण का मार्ग स्वयं प्रशस्त कर सकता है। परमात्मा ने जब सृष्टि रचना प्रारंभ किया तो सबसे पहले वृक्ष , पशु सर्प ,पक्षी,मत्स्यादि बनाए, किन्तु इससे वह संतुष्ट नही हुआ। जब उसने मानव को बनाया तब वह परम प्रसन्न हुआ क्योंकि मानव में विवेक बुद्धि की प्रधानता थी तथा उसमे ही परमात्मा को देखने की शक्ति थी। मानव ही उसे प्राप्त कर सकता था और उसके जैसा बन सकता था। जैसा कि श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित है–

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽत्म शक्त्या, वृक्षान् सरीसृप पशून् कि दंश मत्स्यान। तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय, ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ।।–[1]

संसार में भोगपरायण होना पशु वृत्ति है इसी बात को ध्यान में रखकर ही मनीषियों ने मनुष्य के लिए चार पुरुषार्थों का निर्धारण किया है, जो इस प्रकार है– धर्म, अर्थ,काम तथा मोक्ष। यहां प्रथम प्रधान पुरुषार्थ धर्म है तथा अंतिम चरम पुरुषार्थ मोक्ष है। इन दोनों के बीच में अर्थ और काम को रखा गया है, क्योंकि इनसे जीवन वाह्य रूप से समृद्ध और आन्तरिक रूप से सन्तुष्ट बनता है। किन्तु धर्म से नियंत्रित न होने पर अर्थ और काम कल्याणकारी नहीं रह जाते वरन् पतन के कारण बन जाते हैं तथा मानव को मुख्य लक्ष्य मोक्ष से विमुख कर देते हैं । भगवान श्री.ष्ण यही कहते हैं–

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।

अर्थात् धर्म से अविरोधी काम ही मेरा स्वरूप है।

वर्तमान युग में अर्थ और काम की प्रधानता सर्वत्र दृश्यमान है जिसके कारण मानव आत्म कल्याण से विमुख हो गया है। उसे आज विज्ञान के आविष्कारों से बहुत कुछ प्राप्त हो रहा है किन्तु शान्ति नहीं मिल पा रही है। वह विक्षिप्त, निराशा ,झूठी शान्ति के व्यामोह में भ्रमित हो रहा है। वर्तमान समय में मनुष्य प्रतिस्पर्धात्मक एवं आत्मकेंद्रित जीवन शैली तथा भौतिकवादी .ष्टिकोण के परिणाम स्वरूप चिंताग्रस्त एवं विषादग्रस्त है। प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा में एक दूसरे का प्रतिद्वन्द्वी बनता जा रहा है। अपनी असीमित आकांक्षाओं एवं अदम्य इच्छाओं के कारण तथा अपेक्षा .त सीमित शक्ति एवं साधन के फलस्वरूप असफल होता मानव कुण्ठा से ग्रस्त हो रहा है।उसका मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है।इस प्रकार अवसाद से ग्रस्त मानव किंकर्तव्यविमूढ़ बनकर संशयग्रस्त हो गया है–

इच्छा द्वेष समुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप।।–[2]

मेरे विचार से सम्पूर्ण विश्व में मानव समाज के लिए सबसे बड़ी समस्या यही है।इसी कारण विषाद, तनाव, कर्त्तव्य विमुखता ,चिंता तथा आत्मविस्मृति की स्थिति देखी जा रही है। ये परिस्थितियां व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही स्वास्थ को प्रभावित करती है। इन परिस्थितियों में भगवद्गीता ही उसे सन्मार्ग का दर्शन करा सकती है जिससे हम सहजता पूर्वक बहुत बड़ी समस्या का समाधान प्राप्त कर सकते हैं। कुरुक्षेत्र की रणभूमि में विषादग्रस्त, किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को भगवान श्री कृष्ण द्वारा दिया गया उपदेश वर्तमान समय में भी अत्यंत प्रासंगिक है। गीता की उपयोगिता के विषय में महात्मा गांधी का कहना है कि–" गीता सम्पूर्ण वैदिक शिक्षाओं के तत्त्वार्थ का सारसंग्रह है। इसकी शिक्षाओं का ज्ञान मानवीय महत्त्वाकांक्षाओं को सिद्ध

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

करने वाला है। जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और जब बिल्कुल एकाकी मुझे प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई पड़ती तब मैं गीता की शरण लेता हूं। जहां–तहां कोई न कोई श्लोक मुझे ऐसा दिखाई पड़ जाता है कि मैं विषम परिस्थितियों में भी तुरंत मुस्कराने लगता हूं।'–[४]

अद्यतन समाज में अकर्मण्यता , मानसिक कुण्ठा, औदासीन्यता, असंतोष एवं अवसाद आदि दोषों के व्याप्त एवं प्रभावी होने पर गीता जैसा ग्रंथ अत्यधिक समसामयिक और युगानुरूप है। भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज को जीवित रखने के लिए, उसके जीवन मूल्यों को सतत् अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए,सत्परामर्श देने के लिए,उत्प्रेरित करने के लिए ,सम्भ्रम में एक सही दिशा निर्देश करने के लिए तथा उसे यातनामय भवसागर से मुक्ति दिलाने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धांतों का पठन–पाठन एवं तदनुरूप आचरण की आज महती आवश्यकता है।

आधुनिक वैश्विक समस्याएं चाहे वह आतंकवाद हो, क्षेत्रवाद हो, युवा अवसाद हो, बेरोजगारी हो, जातिवाद हो अथवा गिरते हुए मानव मूल्यों की हो गीता सर्वत्र प्रासंगिक है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अर्जुन स्वयं है जो युद्ध के समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था।बाद में स्वकर्तव्य का पालन करके अपनी सम्पूर्ण समस्याओं से मुक्त हो गया था। आज की समस्याओं के समाधान हेतु गीता के अधोलिखित उपदेशों पर ध्यान देना और उन्हें व्यवहार में लाना आवश्यक है।

१.निष्काम कर्म का उपदेश– कुरुक्षेत्र में युद्ध के समय जब अर्जुन मोहग्रस्त हो जाते हैं और श्री.ष्ण से कहते हैं–हे मधुसूदन ! मैं तीक्ष्ण बाणों से पूज्य पितामह भीष्म तथा गुरु द्रोणाचार्य के विरुद्ध किस प्रकार युद्ध करूं? इन महानुभावों गुरुजनों को विना मारे हुए मैं इस लोक में भिक्षा मांगकर अन्न खाना श्रेयस्कर समझता हूं। क्योंकि गुरु जनों को मारकर भी इस लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और काम रूप भोगों को ही भोगूंगा। मैं यह भी नहीं जान पा रहा हूं कि युद्ध करना या न करना इन दोनो में क्या श्रेष्ठ है।जिनको मारकर मैं जीवित नहीं रहना चाहता वह ही हमारे आत्मीय जन हमसे युद्ध के लिए रणभूमि में खड़े हुए हैं। इसलिए कायरता रूप दोष से उपहित हुए स्वभाव वाला तथा धर्म के विषय में मुग्धचित्त मैं आपसे कल्याण कारी मार्ग पूछता हूं। मैं आपका शरणागत शिष्य हूं मुझे उपदेश दीजिए–

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यतेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।–[५]

इन शंकाओं का समाधान करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाच। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि।। योगस्थ कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय। सिद्धयसिद्धयो समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।–[६]

ये शंकाएं मात्र अर्जुन की नहीं है अपितु जीवन संग्राम में खड़े हुए प्रत्येक मानव की है। अतः भगवान श्री.ष्ण ने अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव जाति को उपदेश देते हुए कहा है कि फल की कामना के बिना, अनासक्ति पूर्वक ,हानि–लाभ में समभाव की .ष्टि रखते हुए कर्मों को करते रहना चाहिए। क्योंकि मनुष्यों का अधिकार कर्म करने में ही है फल में बिल्कुलनहीं। इस प्रकार मनुष्य यदि न अपेक्षा न उपेक्षा के सिद्धांत पर स्वकर्तव्य का पालन करता रहेगा तो अवसाद एवं तनावग्रस्त होने से बचा रह सकता है।

ईश्वर की सर्वव्यापकता का उपदेश– मनुष्य की व्यक्तिगत सोच ही आज सम्पूर्ण कलह का मूल है। मनुष्य अहंकार वश यह सोचता है कि संसार उससे है वह संसार से नहीं है । इसलिए वह उसमें बहुत कुछ परिवर्तन करना चाहता है जिसके फलस्वरूप जैविक और भौतिक परिवेश प्रभावित होता है । इससे व्यक्ति का जीवन धीरे धीरे कष्ट साध्य बनता जाता है। गीता में उपदेश दिया गया है कि यह सब ईश्वर की सृष्टि है। मनुष्य को यह अधिकार नहीं है कि वह प्राकृतिक संसाधनों से छेड़छाड़ करे–

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय। मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।–[७]

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मुझसे भिन्न कोई दूसरा परम कारण नहीं है। यह समस्त संसार सूत्र में मणियों के समान मुझ में गुंथा हुआ है। मैं ही सर्वत्र व्याप्त हूं। मैं ही जो चाहता हूं वही होता है। ईश्वर की सर्वव्यापकता की यह भावना यदि सभी मनुष्यों में आ जाय तो वह कभी भी प्र.ति के विपरीत आचरण नहीं करेगा।इस प्रकार पर्यावरण सम्बन्धी समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

त्यागमय जीवन का उपदेश– मानव जीवन में त्याग का सर्वोपरि महत्व है। त्याग का आशय संसार से पलायन नहीं अपितु सांसारिक पदार्थों में आसक्ति का अभाव है। गीता के १८ वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने संन्यास और त्याग के तत्त्व को बहुत ही स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है– कितने ही पंडित जन तो काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं तथा दूसरे विचार कुशल पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। किन्तु वास्तव में यज्ञ, दान तथा तप आदि कर्म त्याग करने योग्य नहीं है, क्योंकि ये अनिवार्य कर्त्तव्य हैं।यज्ञ,दान तथा तप ये तीनों ही कर्म पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं–

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विंदुः। सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।।–[८]

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्। यज्ञो दानं तपश्चौव पावनानि मनीषिणाम् ।।–[९]

काम क्रोधादि आन्तरिक शत्रुओं पर विजय का उपदेश– मानव को चाहिए कि वह शरीर के अंदर रहने वाले काम,क्रोध,लोभ,मोह,मद एवं मत्सर इन छह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे क्योंकि इनमें से कोई अकेला ही मानव को दुःख पहुंचाने के लिए प्रर्याप्त है। भगवान ने कहा कि विषयों का चिन्तन

PIF-7.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध का जन्म होता है।क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है और मूढ़ता से स्मृति में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। स्मृति में भ्रम उत्पन्न हो जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है तथा बुद्धि का नाश हो जाने से मनुष्य का नाश हो जाता है–

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते। संगात्संजायतेकामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।–[10]

इसलिए भगवान श्री.ष्ण ने गीता के तीसरे अध्याय में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ये काम और क्रोध रजो गुण से उत्पन्न होते हैं इन्हें सबसे बड़ा शत्रु समझो–

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।। एवं बुद्धेः परं बुद्धवा संस्तभ्यात्मानमात्मना। जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।–[11]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति ही कामनाओं को जन्म देती है । यदि काम पर नियंत्रण कर लिया जाए तो अधिकांश समस्याएं समाप्त हो सकती है।

तामसी प्रकृति का त्याग तथा सात्विकी प्र.ति के ग्रहण का उपदेश– आज संसार में भोगपरायणता और भ्रष्टाचार की सर्वत्र समस्या व्याप्त है। यह समस्या आसुरी प्रकृति का फल है। गीतामें तीन प्रकारकी प्रकृतियों का उल्लेख

भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविंद से हुआ है। ये आसुरी (तामसी), राजसी तथा सात्त्विकी नाम से जानी जाती हैं। आसुरी प्र.ति वाले मनुष्य इन्द्रियों की संतुष्टि को ही महत्वपूर्ण मानते हैं।वे अनन्त इच्छाओं में लीन हो कर इन्द्रिय तृप्ति के लिए अनैतिक ढंग से धन का संचय करते हैं। इसके विपरीत सात्त्विकी प्रकृति के मनुष्य सदैव परमात्मा का ध्यान,कीर्तन तथा भजन करते हैं और ऐहिक एवं पारलौकिक दोनों फलों को प्राप्त करते है–

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्र.तिमास्थिताः। भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।– सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।।–[12]

समस्त मनुष्यों में समानता का उपदेश– समाज में व्याप्त असमानता तथा भेदभाव के कारण ही नाना प्रकार के कलह जन्म लेते हैं और वैर भाव एवं शत्रुता का उदय होता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीनों वर्णों में जन्म लेने वाले मनुष्य शूद्र वर्ण को हेय दृष्टि से देखते हैं और सबसे नीचा मानते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि चारों वर्णों की व्यवस्था का सूत्रधार मैं स्वयं हूं। यह व्यवस्था गुणों एवं कर्मों पर आधारित है, जन्म पर नहीं। कोई भी व्यक्ति न ऊंचा है और न कोई नीचा। सभी समान हैं।–

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्मविभागशः।–[14]

भगवान आगे कहते हैं कि स्त्री, वैश्य , शूद्र अन्य पापयोनि जो कोई भी हो वह भी मेरी शरण में आकर परमगति को ही प्राप्त होता है। पुण्यशाली ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्त जन भी मेरी शरण हो कर परम गति को प्राप्त होते हैं। इसलिए तू अनित्य,सुखरहित, इस संसार को प्राप्त कर मेरा ही भजन कर–

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा। अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।–[15]

स्वकर्तव्य पालन का उपदेश– अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मनुष्य समाज में व्याप्त अशांति को मिटाकर शान्ति का निर्माण कर सकता है। गीता के अट्ठारहवें अध्याय में चारों वर्णों के कर्तव्य कर्मों को करने का उपदेश देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि मनुष्य को शास्त्र विहित कर्मों को अवश्य करना चाहिए क्योंकि संसार में कोई भी कर्म ऐसा नही है जो पूर्णतया दोषमुक्त हो। सम्पूर्ण कर्म दोषपूर्ण हैं। जैसे अग्नि में धुआं होता है उसी प्रकार प्रत्येक कर्म में पाप होता है। इसलिए दोष व पाप के भय से कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्। सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।–[16]

इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्या आत्मविस्मृति और विषादपूर्ण मनः स्थिति की है, जिसके कारण तनाव, कर्तव्य बोध का अभाव, चिंता, असहिष्णुता,देश एवं परिवेश के प्रति उदासीनता तथा अनियंत्रित आचार –विचार की प्रधानता सर्वत्र देखी जाती है। इन समस्त समस्याओं का समाधान श्रीमद्भगवद्गीता के अनुशीलन,मनन और उसमें निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर प्राप्त किया जा सकता है। गीता धर्म नियंत्रित अर्थ और काम के सेवन की कल्याणकारी विधि बतलाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. श्रीमद् भागवत–११।१९।७८
2. भगवद्गीता–७।११
३. भगवद्गीता–७।१७
४. महात्मा गांधी,यंग इण्डिया १९२५ पृष्ठ–१०७८–७९
५. भगवद्गीता–२।४७
६. भगवद्गीता–२।४७,४८
७. भगवद्गीता–७।१७
८. भगवद्गीता–१८।३०
९. भगवद्गीता–१८।४५
१०. भगवद्गीता–२।६२,६३
११. भगवद्गीता–३।३७,४३
१2. भगवद्गीता–९।१३
१३. भगवद्गीता–९।१४
१४. भगवद्गीता–४।१३
१५. भगवद्गीता–९।३२,३३।
१६. भगवद्गीता–१८।४८

*****